INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 15 | ISSUE - 11 | DECEMBER – 2025

घर, समाज और सत्ता : मृणाल पांडेय के स्त्रीचिंतन की पड़ताल

प्रियंका ठाकुर
प्राध्यापक, जोगेश चंद्र चौधरी कॉलेज.

मृणाल पांडेय का लेखन समकालीन स्त्री विमर्श को एक नया आयाम देता है। पत्रकारिता, निबंध, संस्मरण और सामाजिक टिप्पणी के माध्यम से उन्होंने स्त्री के निजी अनुभवों को सार्वजनिक विमर्श से जोड़ा है। इन्होंने अपने लेख में घर, समाज और सत्ता में स्त्री की वास्तविक स्थिति की सूक्ष्म पड़ताल की है।

लेखिका के लेखन का उद्देश्य स्वांत: सुखाय या विमर्श के क्षेत्र में स्वयं का नामांकन करवाना नहीं है, अपितु उन्होंने अपनी कलम की धार से स्त्री-विमर्श की जमीन को और उर्वर बनाया है। बिना किसी लाग-लपेट के नारीवाद को परिभाषित करते हुए वे कहती हैं-''नारीवाद कतई स्त्रियों को पूरी तरह समाज से अलग-थलग रखकर देखने और हर क्षेत्र में इन्हें प्रोत्साहित करने का दर्शन नहीं। यह तो एक समग्र दृष्टिकोण है, जो संवेदनशील नागरिकों को पहले शोषित और वंचित स्त्रियों के प्रति सहानुभूति और मानवीय दृष्टिकोण विकसित करके उसके उजास में उन्हें अपने पूर्व समाज में शोषित और प्रवंचित तबको को समझने की क्षमता देता है। साथ ही उनके प्रति एक तहर की कर्मठ दायित्वबोध भी जगाता है। एक लोकतंत्र में सही सुधार तथा पूर्ण रचना का काम् वह आर्थिक क्षेत्र में हो अथवा सामाजिक क्षेत्र में हो; स्वार्थी प्रतिस्पर्धा तथा असमानता के वातावरण में कभी नहीं किया जा सकता। इस तरह नारीवादी शब्दावली के ओठ में छोटे से संपन्न वर्ग के स्त्रियों की स्वतंत्रता और उपयोग वृत्ति को पूरे देश की स्त्रियों की स्थिति बताते हुए आर्थिक-सामाजिक असमानताओं को जायज ठहराना और मुक्त बाजार व्यवस्था एवं स्व-केंद्रित उपभोगतावाद को सभी भरतीय स्त्रियों के लिए एक बेहतर विकल्प बताने, यह एक दारूण झूठ के अलावा कुछ नहीं। यदि सच्चे नारीवाद को बचाए रखना है तो हमें हर क्षेत्र में निर्ममता से इस झूठ का पर्दाफाश करना ही होगा।''1 एक सुचारू समाज के निर्माण के लिए स्वस्थ्य विमर्श का होना, उसके वास्तविक रूप को जानना अत्यावश्यक है। साथ ही प्रत्येक वर्ग की समस्याओं को समान रूप से महत्व देते हुए उसके अनुसार ही समाधानों की खोज की जानी चाहिए। अन्यथा हम एक अंध गह्वर में फँसते चले जाएंगे। एक सुंदर समाज की निर्मित्ति आपसी होड़ से नहीं अपितु साहचर्य के भाव से ही संभव है-''जरूरत स्त्री-पुरुष, सवर्ण या अवर्ण के बीच दबाने या झेलने की क्षमता बढ़ाने की ही नहीं, बल्कि ऐसे संयत, खुले लोकतांत्रिक सम्भाषण को स्थापित करने की है, जिसमें बतौर वक्ता और श्रोता दोनों ही पक्ष बराबरी पर हों। इसके लिए एक-दूसरे की अभिव्यक्ति के ढंग की अच्छी बातें उधार लेने से कोई संकोच नहीं होनी चाहिए। महज हुकूमत या दावेदारी के बाहर जाकर ही एक सुसंस्कृत समाज को कई ऐसे सूत्र जोड़ते हैं।''2

यहां एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि स्त्रियों में लोकतांत्रिक नजरिए का इतना अभाव क्यों है? लेखिका इस प्रश्न का उत्तर तलाशते हुए पाती हैं कि मूल कारण हमारी परंपरावादी दृष्टिकोण है-''हममें से अधिकतर माओं ने खुद अपनी माओं से बचपन में ही एक गूढ़ अनकहा समझौता किया होता है कि हम अपने आपसी रिश्ते की पवित्रता को ईश्वरीय देन की तरह शिरोधार्य करेंगी। जिस पर कभी कोई सवालिया निशान नहीं लगाएंगी और माये पूरे बचपन भर प्राय: हम सभी के लिए आदेश का स्रोत बनकर विनर्म आज्ञाकारिता की एक स्थली रचती हैं। अच्छी लड़की बनने के लिए हम क्या खाएं, पहने, खेले या पढ़ें ही नहीं, हम क्या बोले, क्या सोचें कैसे वचपने देखें- इस पर भी

बेटियां अहर्निश मां जी चौकस पहरेदारी अनुभव करती रहती हैं। दो मनुष्यों की तरह अपने हर सुख-दुख बाँट नहीं पातीं।''3 जब शैशव की शुरुआत ही इस तरह के आज्ञाकारिता और दबावपूर्ण माहौल में होगी तब स्वतंत्र दृष्टिकोण का बनना असंभव हो जाता है। घर व्यक्ति की पहली पाठशाला होती है, वहीं उसके विचारों का निर्माण होता है, तार्किक बुद्धि बनती है। अत: घर में लोकतांत्रित चेतना का होना अत्यंत आवश्यक है। सदियों से स्त्री जो अपनी आज्ञाकारिणी छवि पेश करती आई है, उसका सबसे बड़ा नुकसान यह हुआ कि अब समाज उसके बौद्धिक रूप को स्वीकार ही नहीं पाता। इसलिए ''भीतरी तौर से स्त्री शिक्षा और स्त्री के लिए रोजगार की अहमियत को समाज और राज्य व्यवस्था आज भी पूरी तरह उनके स्वामी और परिवार के संदर्भों में ही बांधकर परखने की आदी है। युवतियां नौकरी करें, पैसा कमाएं तो ठीक, किंतु नौकरी उनके घरेलू काम और परिवार के प्रति स्वामिभक्ति में आड़े न आए और उन्हें पुरुषों की तरह प्रतिस्पर्धाप्रिय तथा स्पष्टवादी न बनाए, यह अपेक्षा सामाजिक तथा सरकारी सोच में गहरे पैठी हुई है।''4

समाज ने स्त्री की छवि को दोयम दर्जे का बनाकर रखा हुआ है। एक तरफ घरेलू स्त्रियों के श्रम का कोई मूल्यांकन नहीं किया जाता तो दूसरी तरफ नौकरीपेशा स्त्रियों को घर और रोजगार की दोहरी चक्की में पिसना पड़ रहा है- ''काम का दोहरा बोझ और घरेलू काम का अवमूल्यन यह दोनों ही बातें स्त्रियों की ऊर्जा सोखती है। दुर्भाग्य से उग्र पुरुषवादी या उग्र नारीवादी दोनों ही यह मानने को राजी नहीं कि अंतत: अधिकतर सफल कामकाजी महिलाओं की जीवन की धूरी (और प्राय: उनकी ऊर्जा और आत्मविश्वास का स्रोत भी) उनका परिवार ही होता है। इसलिए शिक्षित घरेलू स्त्रियों के कामकाज को अनुत्पादक मानना या कामकाजी स्त्री के वैवाहिक और पारिवारिक जीवन को खतरे से घिरा मानना दोनों ही स्त्रियों के असली सशक्तिकरण के खिलाफ भ्रामक दुष्प्रचार है।''5

घर और समाज की भांति ही सत्ता में भी स्त्री की स्थिति नगण्य है। सत्ताधारी वर्ग उसकी स्थिति पर केवल कथनी के तौर पर ही अपनी राय रखते हैं। उसकी वासतविक समस्या से उनका कोई सरोकार नहीं है- ''अधिकांश भारतीयों को आधुनिकता अभी भी एक डरावना सपना और संसद या घर समाज में स्त्री को समान पद देना एक महँगी रईसी प्रतीत होती है। आज संसद से सड़क तक औरतों के प्रति बढ़ते अपराधों पर घनघोर चर्चा जरूर छिड़ी हुई है, पर यह स्मरणीय है कि यह वही संसद है जो महिलाओं को आरक्षण देने में बीदकती है और वहां स्त्रियों की समस्याओं पर चर्चा होती भी है तो जिक्री तौर पर अधिक फिक्री तौर पर कम। यानी बलात्कार के संदर्भ में, बलात्कार के बढ़ते मामलों और अपराधियों की विरल धर-पकड़ तथा नगण्य सी कानूनी कार्रवाई पर जवादतलबी कम ओर दंड विधान को न्याय से ज्यादा सख्त बनाए जाने की पेशकश ज्यादा की जा रही है। यह एक तरह से मूल समस्या से पलायन है।''6 पुरुष इस बात को भली-भांति जानता है कि अगर सत्ता महिला के हाथ में आएगी तो वह परिवार की ही भांति इस जिम्मेदारी का निर्वाह भी पूर्ण ईमानदारी से ही करेगी। अधिकांशत: देखा गया है कि पंचायतों में आकर महिलाएं पुरुष की तुलना में विकास से मुद्दों जैसे- चारा, पानी, ईंधन इन सब पर ज्यादा ध्यान देती हैं। उन्हें रोजमर्रा के जीवन से जुड़ी समस्याओं का भली-भांति ज्ञान होता है। अत: वह इसके निवारण के लिए सक्रिय भी रहती हैं। लेकिन हमारी समस्या यह है कि- ''महिलाओं की राजनीति में भागीदारी के मुद्दे पर हम एक मूलत: चमत्कारप्रिय और सामंतवादी मानसिकता के ग्रस्त देश हैं, जहां योग्य महिलाओं को भी टिकट जागीरी और सूबेदारियों की तरह अनुग्रह की बतौर दिए जाते हैं और जैविक रूप से (पंचायत स्तर से संसद तक) उग पाने और विकसित होकर आगे आने के अवसर उनके लिए आज भी विरल है। हमारी दमदार महिला नेत्रियां भी ऐसे माहौल् में खुद इतनी आक्रांत रहती हैं कि वे अकसर तय नहीं कर पातीं कि वे स्वयं नेता हैं या पार्टी के पुरुष नेताओं के खींचतान का जोर?''7

मृणाल पांडेय इस बात को भली-भांति समझती हैं कि जब तक स्त्रियां राजनीति में स्वयं सशक्त रूप से नहीं आएंगी तब तक न उनकी स्थिति में परिवर्तन आएगा और न ही समाज उसे सम्मानीय स्थान देगा। राजनीति में स्त्रियों की भागीदारिता बढ़ने से दकियानुसी प्रतिष्पर्धा, हिंसा एवं भ्रष्टाचार के मामले में जरूर गिरावट आएगी। साथ ही प्रशसन भी स्त्रियों की दिक्कतों के प्रति अधिक संवेदनशील बनेगा और इसके लिए आवश्यक है स्त्री की दृढ़ इच्छाशक्ति। लेखिका कहती हैं- ''यदि स्त्रियां सचमुच लोकतंत्र की सार्थक शक्ति बनना चाहती हैं, तो अब समय आ गया है कि लोकतंत्र में स्थायित्व और पारदर्शिता चाहने वाले सभी संगठनों तथा चुनाव आयोग के साथ मिलकर वे राजनीति की ऊर्जा को सही उम्मीदवारों तथा साफ-सुथरे संगठनों की मार्फत लगातार एक ऐसी ताकत में तब्दील करने में जुट जाएं जिसके मूल में सच्चे सहकार की भावना हो, बहशी सत्ता लोलुपता नहीं।''8

अत: यह कहा जा सकता है कि मृणाल पांडेय का लेखन घर से लेकर सत्ता तक फैले स्त्री अनुभवों की एक समग्र वैचारिक रूपरेखा प्रस्तुत करता है। उनका स्त्री दृष्टिकोण न तो भावुक आदर्शवाद में उलझता है और न ही एकांगी विद्रोह में; बल्कि सामाजिक यथार्थ की जटिलताओं को समझते हुए संवाद और विवेक के माध्यम से परिवर्तन की संभावनाएं तलाशता है।

संदर्भ सूची

1) पांडेय मृणाल, परिधि पर स्त्री, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2017, पृष्ठ संख्या-47
2) पांडेय मृणाल, स्त्री लंबा सफर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2012, पृष्ठ संख्या-71
3) वही, पृष्ठ संख्या-109
4) पांडेय मृणाल, जहाँ औरतें गढ़ी जाती हैं, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरी आवृत्ति : 2014, पृष्ठ संख्या-140
5) पांडेय मृणाल, स्त्री लंबा सफर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2012, पृष्ठ संख्या-28
6) पांडेय मृणाल, जहाँ औरतें गढ़ी जाती हैं, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरी आवृत्ति : 2014, पृष्ठ संख्या-73
7) वही, पृष्ठ संख्या-108
8) पांडेय मृणाल, परिधि पर स्त्री, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2017, पृष्ठ संख्या-28